जिनचन्द्र सूरि की दिल्ली यात्रा और उसकी ऐतिहासिक महता

डॉ. सहदेव सिंह चौहान

हिजरी सन् 718 (सन् 1318-19 ई.) में अमीर खुसरो ने *नूहसिपेहर* नामक कविता की रचना की थी। इसके चौथे सिपेहर में खुसरो ने दिल्ली के अनंगपाल के विषय में एक अनुश्रुति लिखी है - 'मैंने एक कहानी सुनी है कि पाँच या छह शताब्दी पूर्व दिल्ली में एक महान राजा अनंगपाल था। उसने अपने महल (प्रासाद) पर सिंहों की दो पत्थर की मूर्तियाँ बनवाईं थीं। उसमें प्रत्येक सिंह के पास दो घण्टियाँ लगा दी थीं जिससे कि न्याय का इच्छुक व्यक्ति उन्हें बजा सके और राजा उसे बुलाकर उसका अभियोग सुनकर न्याय कर सके। एक दिन एक कौआ घण्टी पर बैठ गया और उसमें चोंच मारने लगा, और राजा ने यह पुछवाया कि अभियोगी कौन है ? यह सब जानते हैं कि साहसी कौआ सिंहों के दाँतों के बीच से मांस चुन लेता है। पत्थर के सिंह तो शिकार करते नहीं हैं, तब कौए को भोजन कैसे मिल सकता है ? राजा को विश्वास हो गया कि कौए का अभियोग सही है क्योंकि वह पत्थर के सिंहों के दाँतों में मांस प्राप्त नहीं कर सकता, उसने आदेश दिया कि कुछ भेड़ें और बकरियाँ काट कर डाल दी जाएँ जिससे कि कौओं को कुछ दिन भोजन मिल सके।'

निश्चय ही कौओं के साथ किये गये न्याय से इतिहास का सम्बन्ध नहीं है, और यह बकरे इस कारण काटे भी नहीं जाते थे। ये सिंह मूर्तियाँ राजा अनंगपाल के महल के द्वार पर न होकर दिल्ली के कालिका देवी के मन्दिर के द्वार पर थी और भेड़-बकरे बलिदान के लिए काटे जाते थे। आज भी मन्दिर के सामने दक्षिण की ओर दो सिंह देखे जा सकते हैं, जिनके सिर पर घण्टे लटकते रहते हैं। आज भी देवी के दर्शनार्थी उन घण्टों को बजाते हैं, परन्तु उनकी पुकार उनकी श्रद्धा-भजन देवी भले ही सुनती हों, अन्य कोई पार्थिव व्यक्ति उसे सुनने के लिए नहीं आता।

कालिका देवी का वर्तमान मन्दिर सन् 1768 ई. में पुन: बनवाया गया था।[2] यह तो नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान सिंह अनंगपाल के समय के हैं, परन्तु वे उस परम्परा के अवश्य हैं। अब इन सिंहों के पास कालिका देवी पर बकरों की बलि भी नहीं दी जाती। आज दिल्ली की कालिका देवी और योगमाया पूर्ण अहिंसक हैं। इसका कारण सन् 1166 ई. में जैन मुनि जिनचन्द्र सूरि ने इन मन्दिरों में पशुबलि बन्द कराई थी। वह परम्परा जीव हिंसा

कानून या पशुबलि निषेध के आने के पूर्व तक यथावत पालन की जाती रही।

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के खरतरगच्छ का एक प्रसिद्ध मठ चित्रकूट (चित्तौर) में था उस मठ के पट्टाधीश सूरि जैनानुशासन के प्रचार के लिए प्रसिद्ध हैं। सन् 1050 ई. के आस-पास से इस पट्ट के सूरियों के वृतान्त *खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावलि* में प्रकाशित हुए हैं। यद्यपि इस गुर्वावलि में वि.सं. 1393/1336 ई. तक के जैनाचार्यों के वृतान्त दिये गये हैं।[3] परन्तु उक्त विषय के इतिहास के सन्दर्भ में जिनदत्त सूरि और उनके शिष्य जिनचन्द्र सूरि के वृतान्त ही महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों आचार्यों का वृतान्त जिनचन्द्र सूरि के शिष्य जिनपाल उपाध्याय ने लिखा है। जिनपाल ने जिनदत्त सूरि का विवरण तो किसी अन्य ग्रन्थ के आधार पर लिखा है, तथापि जिनचन्द्र सूरि का वृत्तान्त उसने स्वयं अपनी जानकारी से लिखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिनपाल उपाध्याय, जिनचन्द्र सूरि की धर्म-यात्राओं में उनके साथ रहा और प्रतिवर्ष की घटनाओं को अंकित करता रहा। यह ग्रन्थ उसने वि.सं. 1305/1248 ई. में दिल्ली में ही वहां के सेठ साहुली के पुत्र हेमचन्द्र के उपाश्रय में लिखा था।[4] सेठ साहुली निश्चय ही सन् 1192 ई. की घटनाओं के साक्षी होंगे। यह भी संभव है कि सेठ हेमचन्द्र भी उस समय विद्यमान हो। *गुर्वावलि* में जिनपाल ने मुख्यत: धर्म यात्राओं के ही वृत्तान्त लिखे हैं, तथापि उसमें प्रसंगवश राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख आ गया है। इस ग्रन्थ के कथन अत्यन्त प्रामाणिक माने जा सकते हैं।

जिनचन्द्र सूरि वि.सं. 1223/1166 ई. में दिल्ली के राजा मदनपाल तोमर के आग्रह पर दिल्ली पधारे थे, इसका उल्लेख जिनपाल उपाध्याय ने किया है। उस वर्ष का चातुर्मास भी सूरिजी ने दिल्ली में ही बिताया था और वि.सं. 1223 की द्वितीय भाद्रपद वदी 14 को उनका वहीं स्वर्गवास हो गया।[5] सूरिजी की इस यात्रा की समस्त गतिविधियों का वर्णन जिनपाल उपाध्याय ने किया है। इस वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि जिनचन्द्र सूरि के गुरु जिनदत्त सूरि भी दिल्ली आये थे और मदनपाल तोमर से मिले थे। परन्तु, जिनदत्त सूरि के वृत्तान्त में जिनपाल ने उनकी दिल्ली यात्रा का विवरण नहीं दिया है। तथापि जिनदत्त सूरि भी दिल्ली आए थे और वे राजा मदनपाल से मिले थे, इसमें किसी सन्देह के लिए स्थान नहीं है।

जिनदत्त सूरि दिल्ली कब आए होंगे ? इसका केवल अनुमान लगाया जा सकता है। सन् 1151 ई. में मदनपाल तोमर राजा हुआ था। वि.सं. 1211 आषाढ़ वदि 11 (सन् 1154 ई.) में जिनदत्त सूरि निर्वाण प्राप्त कर गये थे,[6] ऐसी दशा में वे सन् 1151 से 1154 ई. के बीच कभी दिल्ली आए होंगे।

सन् 1166 ई. में जिनचन्द्र सूरि ने अपने सार्थ के साथ चौरसिंदानक नामक ग्राम के समीप विश्राम किया। इस समय सूरिजी को अपने सार्थ के लोग अत्यन्त भयभीत दिखाई

दिए। कारण पूछने पर लोगों ने बताया 'प्रभु म्लेच्छ-कटक आ रहा है, वह देखिए आकाश में धूल छा गयी है और कोलाहल हो रहा है।' सूरिजी ने कहा - 'हे सार्थ के सदस्यों! आश्वस्त रहो, अपना समस्त सामान, पशु आदि एकत्रित करलो, प्रभु जिनदत्त सूरि की यही अभिलाषा ('प्रभु जिनदत्तसूरिर्भलिष्यति') थी। इसके पश्चात जिनचन्द्र सूरि ने मंत्रध्यान कर अपने डण्डे से समस्त संघ के चारों ओर रेखा खींच दी। उसके भीतर समस्त सार्थ के लोग आ गये। संघ के सदस्यों को पास से ही निकलने वाले हजारों म्लेच्छ अश्वारोही दिखाई दिये, परन्तु उन म्लेच्छों को संघ दिखाई न दिया, उसके स्थान पर उन्हें परकोटा खिंचा दिखाई दिया और वे दूर निकल गये।[7] परन्तु उन तुरुष्कों का क्या हुआ, जो दिल्ली के आस-पास मंडरा रहे थे? ये तुरूष्क संभवत: शिहाबउद्दीन के नेतृत्व में आये थे।[8]

पास के ग्राम में ही श्री पूज्य आ गये हैं, यह सुनकर दिल्ली निवासी ठक्कुर लोहट, साहू पाल्हण, साहू कुलचन्द्र, साहू गृहिचन्द्र आदि दिल्ली संघ के प्रमुख श्रावक जिनचन्द्र सूरि के दर्शनार्थ निकल पड़े। राजा मदनपाल को जब यह समाचार मिला तो वह भी श्रावक लोगों से भी पहले श्री पूज्य के पास जा पहुँचा। राजा ने सार्थ के सदस्यों को अनेक दान और उपहार देकर सम्मानित किया, श्री पूज्य ने कर्णसुखकारी वाणी में धर्मदेशना की। राजा ने कहा - 'आचार्य, किस स्थान से पधार रहे हैं?' श्री पूज्य ने कहा, 'रुद्रपल्ली से।' राजा ने कहा, 'आचार्य, कृपया उठें और मेरे नगर को पवित्र करें।' '**श्री पूज्यै: प्रभुश्रीजिनदत्तसूरिदत्तोपदेश स्मरणान्न किमपि भणितम।**' परन्तु प्रभुश्री जिनदत्त सूरि द्वारा दिये गये उपदेश का स्मरण कर जिनचन्द्र सूरि ने कोई उत्तर नहीं दिया।[9]

राजा मदनपाल ने फिर कहा, 'आचार्य, आप बोलते क्यों नहीं, क्या मेरे नगर में आपका कोई प्रतिपन्थी रहता है? क्या ऐसा है कि आपके परिवार के योग्य अन्नपानादि उपलब्ध नहीं किया जा सकेगा अथवा कोई अन्य ऐसा कारण है, जिससे आप मेरे नगर के पास आकर भी अन्य दिशा की ओर जा रहे हैं? श्री पूज्य ने कहा, 'महाराज, आपका नगर प्रधान धर्मक्षेत्र है। '**तर्ह्युत्तिष्ठत चलत ढिल्लीं प्रति, न केऽपि युश्मानङग लिकयाऽपि संज्ञास्यती त्यादि।**''**श्रीमदनपालमहाराजोपरोधाद युष्माभिर्योगिनीपुरमध्ये कदापि न विहर्तव्यमि' त्यादि श्रीजिनदत्तसूरिदत्तौपदेशत्यागेन हृदये दूयमाना अपि श्री पूज्या: श्रीढिल्लींप्रति प्रस्थिता:।** अर्थात् - 'मदनपाल महाराज का उपरोध (अवरोध) है कि तुम योगिनीपुर में कदापि विहार न करना'। आदि, जो जिनदत्त सूरि का उपदेश था उसे त्याग कर, तथापि द्विविधापूर्वक श्रीपूज्य जिनचन्द्र सूरि ने दिल्ली नगर में प्रवेश किया।[10]

जिनपाल उपाध्याय ने आगे जिनचन्द्र सूरि की दिल्ली प्रवेश की शोभा यात्रा का वर्णन किया है। चौबीस प्रकार के वाद्य बजने लगे, भाट लोगों ने विरुदावलियाँ का वाचन

प्रारम्भ किया, वसन्त आदि मंगलराग गाये जाने लगे, नर्तकियाँ नृत्य करने लगीं, राजा ने सूरिजी को हाथ का सहारा दिया, आदि। इस प्रकार सूरिजी का दिल्ली प्रवेश हुआ।[11]

दिल्ली में सूरिजी ने देखा कि कुलचन्द्र नामक श्रावक अत्यन्त दुर्बल दिखाई दे रहा है। सूरिजी करुणार्द्र हो गये। सूरिजी ने कुंकुम, कस्तूरी गोरोचन आदि सुरभिद्रव्यों से यंत्रपट पर मंत्राक्षर लिखकर कुलचन्द्र को दे दिया और प्रतिदिन उसका पूजन करने का निर्देश दिया। इस प्रकार पूजन करने से कुलचन्द्र 'कोटिध्वज' हो गया।[12] इस बीच महानवमी का दिन आ गया। सूरिजी ने देखा कि मिथ्या दृष्टि वाले दो देवता मांस के लिए लड़ रहे हैं। सूरिजी ने करुणार्द्र होकर अधिगालि नामक देवता को प्रतिबोधित किया। उसने शान्तचित्त से सूरिजी से कहा – 'भगवन्, मैंने मांसबलि त्याग दी है, आप कृपा कर मेरे रहने के लिए कोई स्थान बतला दें, जहां रहकर मैं आपके आदेशों का प्रतिपालन करता रहूँ।' सूरिजी ने उससे कहा – 'हे महानुभाव! श्री पार्श्वनाथ के चैत्य में प्रवेश करते समय, जो दाहिनी ओर का स्तम्भ है, मैं तुम्हें उसमें स्थापित करता हूँ।' ऐसा कहकर सूरिजी ने पौषधशाला में आये हुए साहु लोहट, साहु कुलचन्द्र, साहु पाल्हण आदि को सम्बोधित करते हुए कहा – 'श्री पार्श्वनाथ के मन्दिर में प्रवेश करते समय दाहिनी ओर पड़ने वाले स्तम्भ पर अधिष्ठापक मूर्ति उत्कीर्ण करादें।' इस आदेश का श्रद्धा-सहित पालन किया गया। सूरिजी ने महाविस्तार के साथ प्रतिष्ठा-विधि सम्पन्न की। उस अधिष्ठापक का नाम 'अतिबल' रखा गया। श्रावकों ने उसे महाभोग लगाना प्रारम्भ किया। 'अतिबल' ने भी श्राावकों की इच्छाओं की पूर्ति करना प्रारम्भ किया।[13]

द्वितीय भाद्रपद वदी 14, विक्रम संवत 1223 को जिनचन्द्र सूरि का स्वर्गवास हो गया। मरने से पूर्व सूरिजी ने कहा था कि मेरा अन्तिम संस्कार जितनी दूरी पर किया जायेगा वहां तक नगर की बस्ती फैल जाएगी। अतएव, श्रावकों ने अनेक मण्डपिकामण्डित विमान में पर उनका शरीर रखकर बहुत दूर ले जाकर उनका अन्तिम संस्कार किया।[14] गुड़गांव रोड़ पर वर्तमान लड्डा सराय के पास जो दादाबाड़ी है, वहीं जिनचन्द्र सूरि का दाह संस्कार का स्थल है।

जिनपाल उपाध्याय ने जिनदत्त सूरि तथा जिनचन्द्र सूरि का जो विवरण दिया है, उसमें प्राप्त राजनीतिक इतिहास के तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

जिनदत्त सूरि का निर्वाण वि.सं. 1211 आषाढ़ वदी 11 (सन् 1154 ई.) में हुआ था, यह *गुर्वावलि* से सिद्ध है।[15] जिनदत्त सूरि कभी दिल्ली आये थे और उन्हें राजा मदनपाल ने फिर कभी दिल्ली न आने का आदेश दिया था, यह भी स्पष्ट है। अतएव, कभी सन् 1151

और 1154 के बीच जिनदत्त सूरि दिल्ली आये थे और राजा मदनपाल तोमर से उनकी भेंट हुई थी। वह भेंट उत्यन्त कटु रही और राजा मदनपाल ने 'उपरोध' किया कि वे पुन: कभी दिल्ली न पधारें। यह झगड़ा किस बात पर हुआ इसका उल्लेख जिनपाल ने नहीं किया। इस घटनाक्रम से मदनपाल सन् 1154 के पूर्व से दिल्ली का राजा था और सन् 1166 ई. तक रहा, इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं रहता।

जिनचन्द्र सूरि का दिल्ली आगमन भी अद्भुत वातावरण में हुआ था। उनके आगमन के साथ ही हजारों म्लेच्छ सैनिक दिल्ली के चारों ओर मंडरा रहे थे। म्लेच्छ कटक के इस आगमन में भी सूरिजी को 'प्रभु जिनदत्त सूरि की अभिलाषा' ज्ञात हुई। मंत्र के बल से म्लेच्छ कटक की दृष्टि को अवरुद्ध कर दिया और उसे सूरिजी के साथ का इतना बड़ा सार्थ समूह न दिखा होगा, इस बात पर उस युग में भले ही विश्वास कर लिया गया हो, आज उस पर विश्वास करना असम्भव है। बुद्धि संगत अनुमान यह है कि म्लेच्छ कटक साभिप्राय दिल्ली लाया गया था।

म्लेच्छ कटक के आगमन के साथ सूरिजी ने अपने गुरु की 'अभिलाषा' का उल्लेख क्यों किया, यह भी विचार करने की बात है। गुरु प्रभु जिनदत्त सूरि 'तुरुष्क भूमि' में धर्मयात्रा करने जाते थे, ऐसा *गुर्वावलि* से ही प्रगट होता है।[16] इस तुरुष्क भूमि से आशय गजनी, मुल्तान, मन्सूरा या लाहोर से है, यह स्पष्ट नहीं है। सिन्ध का मन्सूरा यह नहीं था संभवत मुल्तान ही था।

सम्भव है कि राजा मदनपाल ने निश्चय ही कोई घोर अपराध किया होगा, जिसके कारण जिनदत्त सूरि और जिनचन्द्र सूरि उसका अस्तित्व समाप्त करने के लिए म्लेच्छों को दिल्ली पर आक्रमण करने हेतु प्रेरित करते रहे। मदनपाल का अपराध निश्चय ही उज्जयिनी के शासक गर्दभिल्ल जैसा नहीं था, उसके अपराध का स्वरूप उसके द्वारा किये गये प्रायश्चित से स्पष्ट हो जाता है।

इन घटनाओं से यह ज्ञात होता है कि जब सन् 1151 ई. के आस-पास जिनदत्त सूरि दिल्ली आए तब उन्होंने मदनपाल को यह उपदेश दिया था कि वह योगिनीपुर के भैरव और काली के मन्दिरों में पशुबलि बन्द करा दें और जैन व्यापारियों को व्यापार हेतु अधिक सुविधा दे। मदनपाल ने इस उपदेश का तिरस्कार किया और सूरिजी को भी कभी दिल्ली में प्रवेश न करने का आदेश दे दिया होगा।

तब क्या आपसी द्वेष के लिए भी तुरुष्कों की सहायता अपेक्षित थी ? मदनपाल को इस म्लेच्छ कटक के आने की जानकारी थी, ऐसा उसके व्यवहार से ही ज्ञात होता है।

उसने बहुत सार्थक प्रश्न पूछा था 'आचार्य किस स्थान से पधार रहे हैं ? उत्तर अत्यन्त संक्षिप्त था – 'रुद्रपल्ली से'। सूरिजी ने यह सूचना देने की कृपा नहीं की 'वत्स कहां घूम रहे हो, युद्ध की तैयारी करो, तुम्हारे आस-पास म्लेच्छ-कटक मंडरा रहे हैं।'

कुछ राजनीतिक परिस्थितियाँ ऐसी अवश्य होंगी, जिनके कारण मदनपाल को अपना व्यवहार बदलना पड़ा। सन् 1151-1154 ई. के आस-पास वह अपने आपको इतना शक्तिशाली अनुभव करता था कि उसने जिनदत्त सूरि के आग्रह की अवहेलना की और सन् 1166 ई. में वह इतना विवश कैसे हो गया कि उसे जैन संघ के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ा।

जिनचन्द्र सूरि ने दिल्ली प्रवास के समय दो महत्वपूर्ण कार्य किये। एक तो श्रावक कुलचन्द्र को 'कोटिध्वज' बना दिया, दूसरा- योगिनीपुर में पशुबलि को समाप्त करा दिया। जिस देवता को पशुबलि दी जाती थी उसकी मूर्ति की स्थापना पार्श्वनाथ मन्दिर के स्तम्भ पर ही करा दी गयी और श्रावकों ने उसकी पूजा प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार शाक्तों और जैनों में विश्वास का सामंजस्य स्थापित हो गया। कालिका के मन्दिर में भी जैन श्रावक दर्शनों के लिए जाने लगे। आज भी जब जैन वैश्यों में विवाह होता है तब नवदम्पति इस मन्दिर में आराधना के लिए जाते है।

जैनाचार्यों का तत्कालीन समय में राजा महाराजाओं पर किस प्रकार का प्रभाव होता था, इतिहास में अनेक उदाहरण मिलते हैं यहां उल्लेख करना विषयागत होगा।

हेमचन्द्र सूरि के प्रभाव के कारण तथा प्रधानत: राज्य प्राप्ति में जैनों द्वारा सहायता मिलने के कारण चालुक्य सम्राट कुमारपाल ने जैन धर्म अंगीकार कर लिया था।[17] सन् 1164 ई. के पूर्व ही उसने अपने साम्राज्य में जीवहत्या का निषेध कर दिया। देवताओं के समक्ष बलि के लिए भी कोई जीवहत्या नहीं कर सकता था। हिन्दू धर्मावलम्बियों को पशुबलि के स्थान पर अन्न की बलि देनी पड़ती थी। कुमारपाल प्रशस्ति[18] के अनुसार इस आदेश का पालन सौराष्ट्र, लाट, मालवा, आभीर, मेदपाट, मेरू तथा सपादलक्ष में किया जाता था। कुमारपाल के कुछ सामन्तों ने स्वयं भी इस प्रकार के आदेश प्रचलित किये थे। इसमें सपादलक्ष (शाकम्भरी) तो निश्चय ही विग्रहराज चौहान (अर्णोराज चौहान का पुत्र) के राज्य में था। विग्रहराज की इच्छा हो या न हो, उसे शाकम्भरी के विषय में कुमारपाल चालुक्य के आदेश मानने पड़ते थे। सपादलक्ष में न केवल कुमारपाल का शासन चलता था, वरन सपादलक्ष के नागरिकों की न्याय व्यवस्था भी अणहिलवाड़पाटन में होती थी। इस विषय में *प्रबन्ध चिन्तामणि* में दिये गये 'यूका विहार-प्रबन्ध' से राजनीतिक इतिहास के

अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त किये जा सकते हैं।[19] इस प्रबन्ध में लिखा है – 'सपादलक्ष देश में कोई अविवेकी धनी था। उसकी पत्नी को अपने बाल साफ करते समय एक यूका (जूं) मिला। उसने उसे अपने पति के हाथ पर रख दिया। उस अविवेकी धनी ने उस यूका को मसल डाला। उस नगर में चालुक्य सम्राट की ओर से 'अमारिकारी पंच-कुल' (जीवहिंसा प्रतिबन्ध की देखभाल करने वाले अधिकारी) नियुक्त थे। जब उन्हें सेठ के इस अविवेकी और धर्म विरोधी कार्य का पता चला तब उन्होंने उसे बन्दी बना लिया और पकड़कर अनहिलपाटन लाए। कुमारपाल ने उसे दण्डित किया। दण्ड में उसकी समस्त सम्पत्ति छीन ली गयी और उससे 'यूका-विहार' का निर्माण कराया गया।[20] जैनानुशासन की इस दण्ड व्यवस्था पर कोई टिप्पणी करना अनावश्यक है। सम्भव है इस प्रकार प्राणभय से कुछ मच्छर, खटमल, मक्खी या चींटी विहार भी लोगों को बनवाने पड़े हों। *प्रबन्ध चिन्तामणि* में राजा कुमारपाल द्वारा 'मूषक विहार' बनाने का भी उल्लेख मिलता है।[21]

पुनश्च: तोमरों की जैन विरोधी परम्परा, विजयपाल तोमर के समय से प्रारम्भ हुई और मदनपाल तोमर के समय तक चलती रही। इस अपराध का दण्ड भी उसे भुगतना पड़ा। तोमरों की गाथा लालकोट (दिल्ली) के राज-प्रासाद के प्रांगण में तब तक मंडराती रही, जब तक अंतिम तोमर सम्राट तेजपाल का छिन्न-मस्तक (मृत्यु 1193 ई.) वहां लटका रहा। एक दिन संभवत: कोई चील उसे ले उड़ा ले गई और वह यशोगाथा भी तिरोहित हो गई। योगमाया, कालिका और कालभैरव को यह चरम बलिदान ग्राह्य न हुआ, वे सब परम अहिंसक बन चुके थे, अहिंसक 'अतिबल' भी उससे प्रभावित न हो सका क्योंकि वह बलिदान रक्त रंजित था।

सन् 736 ई. से सन् 1193 ई. तक 457 वर्ष दिल्ली पर आधिपत्य रखने वाले और वीरान गांव को राजधानी का पद दिलाने वाले दिल्ली के तोमरों को आज की दिल्ली ने पूर्णत: भुला दिया है। चाणक्यपुरी से लेकर जवाहर मार्ग तक उसमें दिखाई देते हैं, परन्तु अनंगपाल, कुमारपाल, महीपाल या चाहड़पाल के नाम से भी पुकारा जाता हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता।

संदर्भ

1. अमीर खुसरो, *नूहसिपेहर,* अंगेजी अनुवाद, *हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाय इट्स ऑन हिस्टोरियंस,* इलियट व डाउसन, लन्दन, 1871, भाग 3, पृ. 565
2. श्रीधर, *पार्श्वनाथ चरित, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह,* प्रस्तावना, पृ 84
3. श्री जिनपालोपाध्यादि संकलित, *खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावलि,* (सम्पा.)

जिनविजय मुनि पुरातत्त्वाचार्य, सिंधी जैन शास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, वि.सं. 2013, पृ. 86

4. *खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावलि,* पृ. 49–50
5. वही, पृ. 22
6. वही, पृ. 20
7. वही, पृ. 21
8. मोहम्मद कासिम फरिश्ता, *तारीख–ए–फरिश्ता,* अंग्रेजी अनुवाद, *हिस्ट्री ऑफ द राइज ऑफ द मोहम्मडन पावर इन इण्डिया,* भाग 1, जॉन ब्रिग्स, कलकत्ता, 1966, पृ. 517
9. *खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावलि,* पृ. 21
10. वही, पृ. 22
11. वही, पृ. 22
12. वही, पृ. 22
13. वही, पृ. 22
14. वही, पृ. 22
15. वही, पृ. 20
16. वही, पृ. 17
17. मेरूतुंगाचार्य, *प्रबन्ध चिन्तामणि,* संस्कृत का हिन्दी अनुवाद पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, सम्पा. मुनि जिनविजय, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद – कलकत्ता, वि.सं. 1997, पृ. 104
18. *प्रबन्ध चिन्तामणि,* पृ. 115
19. वही, पृ. 110
20. वही, पृ. 110
21. वही, पृ. 110

शोध अधिकारी

श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ,

मन्दसौर (म.प्र.)